विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४९, आषाढ़ पूर्णिमा, २१ जुलाई, २००५ वर्ष ३५ अंक १

धम्मवाणी

यदा वितक्के उपरुन्धियत्तनो,
नगन्तरे नगविवरं समस्सितो।
वीतद्दरो वीतखिलोव झायति,
ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥

थेरगाथा ५२५

जब कोई साधक किसी पर्वत-प्रदेश की गिरि-गुहा में निर्भय और निर्बाध होकर सम्यक रूपसे ध्यान के आश्रित होता है और अपने वितर्कों को शांत कर लेता है तो उससे बढ़कर परमानंद की अनुभूति नहीं होती।

धम्मगिरि पर पावस ऋतु

(अगस्त १९७९ में 'विपश्यना' में प्रकाशित यह लेख नए साधकों के लाभार्थ पुनर्मुद्रित)

पावस की रमणीय ऋतु आयी। धम्मगिरि का पर्वत-प्रदेश प्रकृति की भुवन-मोहिनी मनोरमा से महिमामंडित हो उठा। ग्रीष्म के उत्ताप से उत्तप्त शैल-शिलाएं पिघल-पिघलकर बहने लगी। सह्याद्रि पर्वत द्रवीभूत हो उठा। शिखर शृंगों से अनेकानेक झरने फूट पड़े। वर्षा के जल से शुष्क धरती तराबोर हो उठी। नीची भूमि ताल-तलैयों सी भर उठी। ऊंची मुलायम मखमली घास सी तरु-तृणों की हरीतिमा, पुष्प-पल्लवों की रंगीनियां, पर्वतीय पृथ्वी का साज-शृंगार करने की होड़ में लग गयीं। अकिंचन आकाश शून्यता के दारिय से उन्मुक्त हुआ। दिशाओं के ओर-छोर तक नीरभरे नीरद ही नीरद, पर्जन्य ही पर्जन्य भर गए। मेघ-मालाओं की संपद्-संपन्नता से, श्री-समृद्धि से गगनमंडल की गरिमा गौरवान्वित हो उठी। कहीं रिक्तता नहीं, क्षुद्रता नहीं, सूनापन नहीं, उदासी नहीं, मायूसी नहीं। धरती और आकाश पर सर्वत्र वैभव विलास, उल्लास-उमंग और वर्षा का मंगल उत्सव ही उत्सव।

उन्मुक्त अठखेलियां करती हुई प्रकृति का आमोद-प्रमोद असीम हो उठा। पल-पल परिवर्तित। अभी कोमल, अभी कठोर। अभी सूक्ष्म, अभी स्थूल। समीपवर्ती खेतों में उगी हुई घास में मनोमुग्धकारी लहरियां पैदा करता हुआ और खुशियों की किलकारियां भरता हुआ पवन, देखते-देखते अट्टहास करते हुए प्रबल प्रभंजन का रूप धारण कर लेता है और उत्तर की ओर स्थित सह्याद्रि पर्वत पर से गिरने वाले जल-प्रपातों की जल-राशि से कंदुक-क्रीड़ा करने लगता है। उसे आकाश की ओर उछालता है। वर्षा की श्रुति-मधुर रिम-झिम किसी दिव्य अप्सरा के नर्तन-थिरकनसे निःसृत नूपुर पायलों की-सी रुनन-झुनन पैदा करती है। और यकायक इसी मधुर झंकार के बीच दक्षिणी क्षितिज से एक भीम-भैरव गड़गड़ाहट आती है और सारे अंतरिक्ष को प्रकंपित करती हुई, उत्तर के सह्याद्रि पर्वत को पार कर जाती है। पृथ्वीतल पर दादुर मंडली का समवेत सुर-आलाप चलता है और इसी बीच अचानक दिल-दहला देने वाली कर्णभेदी बिजली कड़क उठती है। दिन दोपहर में भी सारे वातावरण पर निविड़ निशा की-सी तमिस्रा चादर तनी रहती है और क्षण भर में समग्र धरती और आकाश विद्युत की चपल चमक से चौंधिया उठता है। यूं प्रकृति क्षण-क्षण अपना वेश बदलती रहती है। इस गिरिप्रदेश की विस्तृत रंगभूमि पर नियति-नटी नई-नई नृत्य मुद्राएं, नई-नई भाव-भंगिमाएं प्रकट करती रहती है। नई-नई वेशभूषा, नई-नई साज-सज्जा, नई-नई सीन-सीनरियां, नए-नए वाद्य-वृन्द प्रकटकरती रहती है। पावस के वैभव में धम्मगिरि के पर्वत प्रदेश का संपूर्ण परिवेश प्रतिपल प्राणवंत बना रहता है।

और ऐसे में शांति पठार का धर्म चैत्य मानो बांह पसार कर साधकों का आह्वान करता हुआ कहता है – "आओ, ऐ दुनियावी दुःख-दर्द से प्रपीड़ित मानवो! आओ! मेरी शांतिदायिनी गोद में आओ! मेरे अंक में समाओ! मेरे भीतर गिरि-गुहाओं सदृश इन नवनिर्मित शून्यागारों में शरण लो। पालथी मार कर, कमर सीधी करके बैठो। प्रकृति का जो प्रपंच बाहर देखा है, अब उसे भीतर देखो। अंतर्मुखी होकर यथाभूत दर्शन करो! प्रत्यक्षानुभूति द्वारा अनित्य बोध जगाओ! विपश्यना करो! विपश्यना करो! विपश्यना करो!और अपना मंगल साधो!

सचमुच पावस ऋतु और पर्वतप्रदेश ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त है। ऐसे में ध्यान का आनंद स्वभावतः अपरिमित हो उठता है। बुद्धकालीन विपश्यी साधकों के हृदयोद्गार पावस ऋतु में पर्वत पर ध्यान करने की प्रबल प्रेरणा प्रदान करते हैं। ऐसा एक साधक अपना प्रत्यक्ष अनुभव प्रकटकरता हुआ कहता है –

यदा नभे गज्जति मेघदुन्दुभि, धाराकुला विहगपथे समन्ततो।
भिक्खू च पब्भारगतोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥

थेरगाथा – ५२२

– जब गगन में मेघ-दुन्दुभि बज रही हो, समग्र विहगपथीय आकाश जलधारा ही जलधारा से भर उठा हो, ऐसे समय जब कोई साधक गिरि-गह्वर में ध्यान करता है तो चित्त-एकाग्रता से प्राप्त उस परम आनंद से बढ़कर और कोई आनंद नहीं होता।

पार्वतीय पावस साधक को सदा प्रिय लगता है, क्योंकि ऐसे मनोरम वातावरण में मन खूब ध्यानस्थ होता है। एक साधक अपने

अनुभव का उद्गार प्रकट करता हुआ कहता है –

अभिवुट्ठा रम्मतला, नगा इसिभि सेविता।
अब्भुन्नदिता सिखीहि, ते सेला रमयन्ति मं॥

थेरगाथा – १०६८

–मयूरों के कूजन से अभिगुंजित, ध्यानी ऋषियों द्वारा सेवित, वर्षाजल से सिंचित रमणीय पर्वत-प्रदेश मुझे अत्यंत प्रिय है।

सचमुच पावस की ऋतु और पावन पर्वतीय तपोभूमि एकांत ध्यान के लिए अत्यंत अनुकूल होती है। तभी तो साधक का मन ऐसी सुविधा के लिए लालायित हो उठता है। पूर्वकाल के एक ध्यानी की ललक है –

कदा नु मं पावुसकालमेघो, नवेन तोयेन सचीवरं वने।
इसिप्पयातम्हि पथे वजन्तं, ओवस्सते तं नु कदा भविस्सति॥

थेरगाथा – ११०५

– ऋषियों के चले हुए आर्यमार्ग का अनुसरण करते हुए (विपश्यना ध्यान करते हुए) मेरे वस्त्र वर्षा के नवल जल से कब भीगेंगे? मेरी यह मंगल अभिलाषा कब पूरी होगी?

बरसती वर्षा के समय गड़गड़ाते बादलों के तले ध्यानगुहा में एकाकी विहार करते हुए साधक को कितना संतोष अनुभव होता है –

देवो च वस्सति देवो च गळगळायति।
एको चाहं भेरवे बिले विहरामि॥

थेरगाथा – १८९

– पर्जन्यदेव बरसता है, पर्जन्यदेव गड़गड़ाता है और मैं एकाकी भैरव-गुहा में विहार करता हूं।

ऐसे समय साधक अपने चित्त को उत्साहित करता है कि हे चित्त तुम –

...पब्भारकुट्टे पकतेव सुन्दरे।
नवम्बुना पावुससित्थकानने।
तहिं गुहागेहगतो रमिस्ससि॥

थेरगाथा – ११३८

– प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर पर्वत प्रदेश में पावस ऋतु के नवल जल से सिंचित वन में, किसी गिरि-गुहा को घर बना कर रमोगे और

मिगो यथा सेरि सुचित्तकानने, रम्मं गिरिं पावुसअब्भमालिनिं।
अनाकुले तत्थ नगे रमिस्सं, असंसयं चित्त परा भविस्ससि॥

थेरगाथा – ११४७

– जिस प्रकार सुंदर कानन में उन्मुक्त मृग विचरण करता है उसी प्रकार पावस ऋतु की मेघमालाओं से रमणीय पर्वत पर आकर तुम व्याकुलता-मुक्त होकर रमण करोगे और ऐ मेरे चित्त! निःसंदेह तुम भव-पार हो जाओगे।

भव पार होने के लिए ही तो एकांतीय पर्वतवास है, क्योंकि वर्षा ऋतु में सम्यक रूपेन ध्यान करने पर –

यथा अब्भानि वेरम्भो, वातो नुदति पावुसे।
सञ्ञा मे अभिकिरन्ति, विवेक पटिसञ्ञुता॥

थेरगाथा – ५९८

– जिस प्रकार पावस ऋतु में झंझावात मेघों को उड़ा ले जाता है, उसी प्रकार मेरे चित्त से भव-संज्ञा दूर होती है और मन निष्कामता से भर उठता है।

यह पावस के ध्यान की ही महिमा है कि –

धरणी च सिञ्चति वाति, मालुतो विज्जुता चरति नभे।
उपसमन्ति वितक्का, चित्तं सुसमाहितं ममा॥

थेरगाथा – ५०

– वर्षा धरती को सींच रही है, हवा बह रही है, आसमान में बिजली चमक रही है, ऐसे में ध्यान करते हुए मेरा मन वितर्क-विहीन हो गया है। मेरा चित्त सुसमाहित हो गया है।

परम आनंद की उपलब्धि होती है ऐसी ध्यान भावना में। तभी तो किसी विदर्शी विपश्यी ने हर्षोद्गार प्रकट करते हुए कहा –

यदा निसीथे रहितम्हि कानने,
देवे गळन्तम्हि नदन्ति दाठिनो।
भिक्खू च पब्भारगतोव झायति,
ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥

थेरगाथा – ५२४

– जब वर्षा के बादल गड़गड़ाते हों – जैसे हाथी चिंघाड़ते हों और कोई साधक पर्वत गुफा में ध्यान भावना करता हो, तब उसे जिस परमानंद का अनुभव होता है, उससे बढ़कर और कोई आनंद नहीं होता।

सममुच **"सब्बरतिं धम्मरतिं जिनाति"** –सारे आनंदों से बढ़कर धर्म का आनंद है।

इसी आनंद के लिए ही तो वर्षाकाल और एकांत गुहा के ध्यान का महत्त्व है। इसी के लिए विपश्यी साधक धर्म कामना करता है –

कदा नुहं पब्बतकन्दरासु, एकाकियो अद्दुतियो विहस्सं।
अनिच्चतो सब्बभवं विपस्सं, तं मे इदं तं नु कदा भविस्सति॥

थेरगाथा – १०९४

– मैं पर्वतगुहा में, बिना किसी दूसरे के, कब अकेला विहार करूंगा? कब सारे संसार के प्रति अनित्यबोधिनी विपश्यना करूंगा? मेरी यह धर्म अभिलाषा कब पूरी होगी?

अनित्य बोधिनी विपश्यना के लिए ही शांतिपठार के धर्म चैत्य का धर्म-आह्वान है –

"आओ, जो बाहर है उसे ही भीतर देखो। यथाभूत देखो, यथातथ्य देखो, यथास्वभाव देखो। **अनिच्चावत सङ्खारा, अनिच्चावत सङ्खारा।** अनिच्च, अनिच्च, अनिच्च। अनित्य है, अनित्य है, अनित्य है। जो बनता है, वह बदलता ही है!"

बाहर आकाश में बादल उमड़ते-घुमड़ते हैं। उपवन में पवन आन्दोलित होता है। वृक्ष झूमते हैं। टहनियां झूलती हैं। पत्ते फरफराते हैं। दूर बादल लहलहाते हैं। सर्वत्र अस्थिरता ही अस्थिरता नजर आती है। इसी प्रकार भीतर भी सर्वत्र अस्थिरता ही अस्थिरता, आन्दोलन ही आन्दोलन, हलन-चलन ही हलन-चलन महसूस होती है। बाहर उत्तर की ओर के सह्याद्रि पर्वत की खड़ी चट्टानी दीवार से झर-झर

झरने झरते हैं। इसी प्रकार भीतर भी अनित्य बोधिनी चैतन्य गंगा सिर से पांव तक झरझराती रहती है। बाहर सारी धरती पर बूंदा-बांदी हो रही हैं। भीतर भी इसी प्रकार स्पन्दनों की बूंदा-बांदी चल रही है। बाहर के ताल-तलैयों पर वर्षाजल के बुदबुदे बनते हैं और तुरंत नष्ट हो जाते हैं। भीतर भी इसी प्रकार बुदबुदे उत्पन्न होते हैं और प्रतिक्षण नष्ट होते हैं। बाहर बहती हुई जलधाराओं में नन्हीं-नन्हीं ऊर्मियां लहराती चलती हैं। भीतर भी इसी प्रकार लहरियां ही लहरियां, ऊर्मियां ही ऊर्मियां, उत्पाद-व्यय ही उत्पाद-व्यय, उदय-व्यय ही उदय-व्यय – **"यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं"**। बाहर घनीभूत बादल छा जाते हैं, भीतर भी भावावेश का घना कुहरा छा जाता है। बाहर देखते-देखते बादलों की सघनता विदीर्ण होती है। हवा उन्हें तितर-बितर कर देती है। इसी प्रकार भीतर भी अनित्य-बोधिनी प्रज्ञा का पवन भावावेश की घनसंज्ञा को विदीर्ण करता है। बाहर बादल हटते ही शून्य आकाश की वास्तविकता प्रकट होती है। भीतर भी इसी प्रकार संस्कारों के बादल फटते ही माया दूर होती है और यथार्थ का शून्याकाश प्रकट होता है। जैसे बाहर का आकाश बादलों से मुक्त हो जाता है, वैसे ही भीतर का चित्ताकाश आस्रवों से मुक्त हो जाता है। धुल कर नितांत विरज-विमल हो जाता है।

यूं बाहर से भीतर की ओर प्रवेश करते हुए विपश्यी साधक को प्रभूत प्रेरणा मिलती है। जब उसका चित्त विपश्यना से पूरी तरह सुभावित हो जाता है तो वह देखता है कि –

यथा अगारं सुच्छन्नं, वुट्ठी न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति॥

थेरगाथा – १३४

– उसके चित्त में राग नहीं पैठ सकता, ठीक वैसे ही जैसे कि ठीक से छाई हुई छत में वर्षा का जल प्रवेश नहीं पा सकता।

और ऐसी सुस्वस्थ चित्त अवस्था में विपश्यी साधक उन्मुक्त होकर गा उठता हैं –

छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता, वस्स देव यथासुखं।
चित्तं मे सुसमाहितं विमुत्तं, आतापी विहरामि वस्स देवा॥

थेरगाथा – १

– मेरी कुटी छायी है, सुखदायी है, हवा-पानी से सुरक्षित है, पर्जन्य देव! अब तुम चाहो तो जी भर कर बरसो!

मेरा चित्त सुसमाहित है, राग से विमुक्त है। मैं तापस जीवन जीता हूं। बरसो! बरसो! हे पर्जन्य देव! अब तुम चाहो तो जी भर कर बरसो!!

धन्य है पावस ऋतु! धन्य है पर्वत प्रदेश! धन्य है परिवर्तनशील प्रकृति! धन्य है धम्मगिरि! धन्य है तपोवन! धन्य है शांतिपठार! धन्य है धर्म-चैत्य और धर्म-चैत्य की ध्यान गुफाएं! धन्य है विपश्यना साधना, जिसे साध कर धन्य हो उठते हैं विपश्यी साधक !!

सब का मंगल हो! सब का कल्याण हो!!

कल्याणमित्र,

स. ना. गो.

बहराइन में पहला विपश्यना शिविर

विगत २ से १३ जून २००५ तक, नवनिर्मित **'बहराइन वेलनेस रिसोर्ट'** में एक विपश्यना शिविर का आयोजन किया गया। यहा शरीर को स्वस्थ और मजबूत रखने के लिए सारी सुविधाएं हैं और केवल शाकाहारी भोजन दिया जाता है। शराब आदि की बिल्कुल अनुमति नहीं है। यहां का वातावरण शांत है, चारों ओर पेड़ हैं, जहां केवल चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई पड़ती है।

शिविर सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इसमें १३ साधक तथा ४ पूर्णकालिक धम्मसेवक थे। कुछ अंशकालिक सेवक भी थे, जिन्होंने शिविर में भाग लेने के साथ-साथ प्रथम दिन शिविर को संभाला।

७-८ वर्ष पहले, हवाई द्वीप में, जहां बहराइन से नाव से जाने में एक घंटा लगता है, एक शिविर आयोजित किया गया था।

शिविर में पांच नये और आठ पुराने साधक थे। इनमें पांच पुरुष और आठ महिलायें थीं।

अतिरिक्त क्रियाकलाप – शिविर के अंत में 'बहरीन वेलनेस रिसोर्ट' के प्रबंधक ने अपने स्टाफ को विपश्यना के बारे में बताने की इच्छा प्रकट की और उनके पुस्तकालय में विपश्यना संबंधी पुस्तकें रखने के बारे में भी रुचि दिखलायी। अतः पूरे स्टाफ को शिविर के बाद पू. गुरुजी की **'इन्ट्रोडक्शन टु विपश्यना'** नामक विडियो कैसेट दिखायी गयी और विपश्यना से संबंधित पुस्तकें भिजवाने की व्यवस्था की गयी।

शिविर की प्रमुख विशेषताएं थीं –

१. भारतीय, श्रीलंकाई, जर्मन, अंग्रेज, मलेशियन और बहराइनियों ने भाग लिया।

२. उसी तरह चार धर्मसेवक भी चार भिन्न-भिन्न देश के थे – बहराइन के एक मुस्लिम, श्रीलंका के एक बौद्ध, भारतीय हिन्दू, मलेशियन ईसाई।

३. ६८ वर्ष के एक प्रौढ़ व्यक्ति ने शिविर में सेवा दी।

निम्न विपश्यना केंद्रों पर मैनेजर की आवश्यकता है

कम-से-कम एक सतिपट्ठान शिविर किये, ६० वर्ष से कम आयु के साधक, जिन्हें **हिंदी और अंग्रेजी** भाषाओं का ज्ञान हो, आवेदन कर सकते हैं। उन्हें रहने के लिए निवास तथा भोजन की सुविधा के साथ कुछ मानदेय भी दिया जायेगा।

१) धम्मबोधि, बोधगया– संपर्क : बोधगया अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, मगध विश्वविद्यालय के समीप, पो. मगध विश्वविद्यालय, गया-डोभी रोड, बोधगया-८२४२३४, फोनः **(०६३१)** २२००४३७.

२) धम्मसुवत्थी, श्रावस्ती– संपर्क : जेतवन विपश्यना साधना केंद्र कटरा बाई- पास, श्रावस्ती, पिन-२७१८४५; फोनः **(०५२५२)** २६५४३९, मोबाईलः ९४१५००७७३३, ९४१५०२८०८४; Email:dhammasravasti@yahoo.com

३) धम्मचक्क, सारनाथ– संपर्क : १) श्री गुप्ता, चौधरी चेंबर्स, D-५३/९७-A, रथयात्रा, गुरुबाग रोड, वाराणसी-२२१०१०; मोबाईलः ९३३६९-१४८३४, ९४१५२-०२१३५. २) श्री सत्यप्रकाश, मोबाईलः ०९९३५५-५८१००. फैक्सः **(०५४२)** २२०२२८५. Email: kambalghar@sancharnet.in

नैतिक मूल्यों की शिक्षा में विपश्यना का योगदान

'नैतिक मूल्यों की शिक्षा में विपश्यना का योगदान'– विषय पर विपश्यना केंद्र– **धम्मपुण्ण,** पुणे में एक कार्यशाला का आयोजन किया गया।

१२ मई से २६ मई २००५, तक आयोजित इस कार्यशाला में ३८ स्कूल-शिक्षकों ने भाग लिया। इनमें से १६ पुराने साधक थे। कार्यशाला के ठीक बाद एक सहभागी ने केन्द्रीय विद्यालय बी.ई.जी. पुणे में देश के सभी भागों से आये ७० शिक्षकों को इस विषय पर विस्तृत चर्चा के लिए एक परिचर्चा-सत्र का आयोजन किया, जहां विपश्यना के बारे में नवीनतम सूचनाएं भी दी गयीं।

मंगल मृत्यु

नाशिक के श्री जयकुमार टीबड़ेवाल ने धम्मगिरि पर अनेक शिविर किये, सेवाएं दीं और ग्लोबल पगोड़ा के निर्माण में बहुत योगदान दिया। वरिष्ठ सहायक आचार्य के रूप में भी साधकों की बड़ी सेवा की। उनकी इस निःस्वार्थ सेवा से उन्हें सद्गति मिले, धम्मपरिवार की यही मंगल कामना है।

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

1. Mr. Dahanaka Ralage Rathnasiri, *Sri Lanka*
2. Mrs. Amitha Siriwardene, *Sri Lanka*
3. Mr. Fu-Hsin Yu, *Taiwan*
4. Mr. Tien Jiun Hong, *Taiwan*
5. Ms. Clara Jiménez, *Spain*

बाल-शिविर शिक्षक

१. श्री खेताभाई सोलंकी, पालनपुर
2. Mr. Jason & Mrs. Chiam, Kian Ber, *Singapore*
3. Ms. Tan, Tan Hoy, *Malaysia*
4. Ms. Tan, Geok Pooi, *Malaysia*
5. Mr. Yeo, Chin Hock, *Malaysia*
6. Mr. Khoo, Hong Eng, *Malaysia*

दोहे धर्म के

नन्हा-सा परमाणु कण, या विशाल ब्रह्मांड।
नश्वर ही है मिट्टी कण, या मिट्टी का भांड॥

भूमंडल ग्रह उपग्रह, सूर्य चंद्र नक्षत्र।
सभी मृत्यु आधीन हैं, नश्वरता सर्वत्र॥

शीत-ताप वर्षा-पवन, इनका पड़े प्रभाव।
विकृत होय विनष्ट हो, ऐसा रूप स्वभाव॥

देखो अपने आपको, समझो अपना आप।
अपने को जाने बिना, मिटे न भव-संताप॥

परम सत्य कल्पित नहीं, यथाभूत ही होय।
करे विभाजन स्थूल का, सूक्ष्म प्रकट तब होय॥

रूप देख मत उलझ रे, यह धोखे का जाल।
सुंदर चिकने चाम के, भीतर नर-कंकाल॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा.) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई-४०० ०१८
फोनः २४९३ ८८९३, फैक्सः २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

सदा बदलतो ही रवै, इब छाया इब धूप।
कदे एक सो ना रवै, ईं धरती को रूप॥

रूप रूप तो सै कवै, अरथ न समझै कोय।
नस्ट हुवै सो रूप है, रुपियो ध्रुव कद होय?

गोरी गोरी चाम है, चिकणी चिकणी खोल।
भीतर सड़तो नरक है, मन की आंख्या खोल॥

के मैं पग हूं, हाथ हूं? आंख नाक मुँह जीभ?
हाड, मांस या चाम हूं? खून, राद या पीप?

मैं मैं मैं करतो रयो, समझ न पायो मूढ़।
ज्यूं ही अंतरमुख हुयो, प्रगट्योअ सत्य प्रगूढ़॥

बाहर बाहर भटकतां, मिलै न सच को सार।
हो अंतरमुख मानखा, अपनी ओर निहार॥

एक साधक
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४९, आषाढ़ पूर्णिमा, २१ जुलाई, २००५**

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. ५००/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003-05

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
e-mail: info@giri.dhamma.org
Website: www.vri.dhamma.org